कथा मंच

नचनी काकी

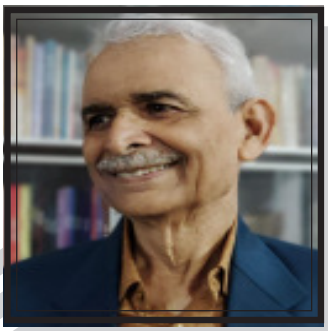

डॉ. प्रहलाद चंद्र दास
बोकारो, झारखंड
मो0- 9431743074

देहात का रास्ता और उस पर एक सजी-संवरी युवती। मुँह में पान, उस जमाने में भी पैरों में सैंडल, कमर तक लटकती दो चोटियाँ, चोटियों पर लाल-पीले फीतों से बने बड़े-बड़े फूल खोंसे हुए और ऊपर से खुला माथा। अमूमन, नचनियों की यही वेश-भूषा होती थी उन दिनों। नचनी काकी, लेकिन ऐसी नहीं थी। बनाव-शृंगार उसके भी होते थे, पर साधारण और वह माथे पर घूँघट भी रखती थी। इसलिए कभी-कभी उसे पहचानने में भूल हो जाती थी।

रसिक काकू लेकिन ऐसे नहीं थे। वे सर से पैर तक 'रसिक' थे। रसिक क्या, एकदम से 'रसिक-नागर'! गर्दन तक लटकते लंबे-लंबे बाल, जिन्हें हम 'जुल्फी' कहते थे, और जो 'मादल' पीटने के समय सर धुनते हुए रसिक काकू के मुख-मंडल पर उसी ताल और लय में उठते-गिरते थे; पूरी बाँह का सफेद झक-झक करता सिल्कन कुरता जिसमें सोने की चेन और बटन होते थे; जमीन को चूमती हुई धोती, जिसका एक किनारा कुरते की जेब में खोंसा हुआ होता और पैरों में मच-मच करते जूते।

रसिक काकू अपनी जेब में एक छोटी कंघी जरूर रखते और समय-समय पर उससे अपने बाल संवारते रहते। उनकी पहचान में कोई भूल नहीं होती। कोई भी कह देता–'यह आदमी 'रसिक' हैं।'

रसिक काकू का असली नाम लाल सिंह था और हमलोग उन्हें लाल काकू कह कर पुकारते थे। लेकिन, जब से उन्होंने नचनी काकी को 'रख' लिया तब से वे 'रसिक' के रूप में विख्यात हो गए थे और हमलोग उन्हें 'लाल काकू' कहना छोड़ कर 'रसिक काकू' कहने लगे थे।

इन्हीं नचनी काकी और रसिक काकू को अपने पूरे दल-बल और साजो-सामान के साथ उस दिन बाहर जाते देखा तो टोक दिया, 'क्यों काकू, सूरज 'चाक' पर जा रहा है (अस्त होने वाला है) और आप लोग इस वक्त बाहर जा रहे हैं?'

'पूछो अपनी नचनी काकी से!' रसिक काकू ने इशारा किया और खुद कंघी निकालकर अपने बाल सवांरने लगे।

'ज्यादा दूर नहीं, यहीं डोमन पुर

जा रहे हैं, नुनुवां (बबुआ)! चलो न, नाच देख कर आवोगे!' नचनी काकी ने कहा, 'लेकिन, तुम्हारे काकू रूठ (रूस) गए हैं। बेगारी; जाना ही नहीं चाहते थे। मैंने कहा कि गरीब-गरीबान की खुशी यों ही क्यों मर जाएगी? अरे, वही लक्ष्मण बाउरी के घर लड़का हुआ है, कितनी चिरौरी-विनती के बाद। आज छठी है। कह रहा था—बेटे के जन्म पर नचनी का नाच करने का मंसूबा किया था। तुम चाहो तो पूरा हो सकता है। पचास रुपये लाया हूं।'

'और नाचनेवालियां तो बड़े-बड़ों के यहां बेगार कर आती हैं। तुम्हारे काकू के 'परताप' से किसी 'बड़े' की हिम्मत नहीं हुई मुझे बेगार नचवाने की। वह गरीब भी पचास रुपये दे रहा था। लेकिन, मैंने मना कर दिया। कहा, 'रख ले, मौगी (पत्नी) की दवा-दारू करना। तुम्हारे यहां नाच होगा। अब जाओ! अब, वचन दे दिया है तो उसे निभाना भी है। सो इन्हें मनाते-मनाते शाम हो गयी, तब कहीं जा कर ये राजी हुए हैं।'

साजिंदे रुक गए थे। एक की पीठ से कपड़े की गांठ में बंधा हारमोनियम लटक रहा था। दूसरे की पीठ से तबला। एक तीसरा व्यक्ति मादल लटकाए हुए था। दो-तीन व्यक्ति और खाली हाथ थे। नचनी काकी ने अब उन्हें मुड़कर देखा, कहा—'खड़े क्यों हो तुम लोग? चलते रहो। मैं अभी आई।'

लोग सिटपिटाए-से आगे बढ़ने लगे। मेरी आंखें उसके तेज-दीप्त मुखमंडल पर टिकी थीं। अपनी तरफ गौर से देखते पाकर उसने चुटकी ली, 'बहुत सुंदर लग रही हूँ न? अरे, यही सुंदरता तो मेरी दुश्मन बन गयी। खैर, अब तुम्हारा चानस (चांस) तो गया नुनुआं। तुम्हारे काकू ने हाथ मार दिया।' और वह खिलखिला कर हंस पड़ी। मेरा मुँह लटक गया।

'तुम्हारी आदत नहीं छूटेगी। बच्चों से भी मजाक करने लगती हो?' रसिक काकू ने उसका हाथ पकड़ा और खींच कर साथ कर लिया। मेरी ओर मुड़ कर बोले, 'कुछ मन में न लाना नुनुआं!'

तालाब की ऊंची मेड़ पर जाते हुए उन्हें, मैं देखता रह गया। ऊपर वे जितने छोटे लग रहे थे, नीचे पानी में उतने ही बड़े लग रहे थे।

क्या रूप, क्या तेज! नचनी काकी के इसी रूप और तेज के कारण लाल काकू, रसिक काकू बन कर रह गए थे।

नचनी काकी की कहानी भी अजीब है। कहते हैं कि नचनी काकी इधर की लड़की नहीं थी। दूर, नदी-पार (दामोदर नदी के उस पार) के किसी डोम की लड़की थी। गरीबी में जन्मी, पली और बढ़ी। घर में खाने के लाले पड़ते। वय: संधि की अवस्था में ही वह हादसा हुआ था। उस गांव में उस समय की बहुचर्चित नचनी 'चपला' का नाच होने वाला था। वह भी नाच देखने गयी थी। उसने देखा, चारों ओर से चपला पर नोटों की बारिश हो रही है। कोई स्वयं जाकर उसकी ब्लाउज में नोट खोंस आता है। कोई उसे बुला कर पैसे देता है। भरा हुआ आसर, झरता हुआ रुपया! आंख, होंठ और पेट ने मिल कर एक निर्णय लिया, और नाच जब खत्म हुआ तो वह रसिक बाबू से जा मिली। बोली, 'मैं भी नचनी बनूंगी।' रसिक बाबू ने एक बार उसकी तरफ तांका। भौंचक रह गया। इतना रूप?

चपला का शरीर भी थक रहा था। उसने सोचा, अच्छा होगा एक सहायिका हो जाएगी। एकाध घंटे तो आसर संभालेगी। लोग तो इसका रूप ही देखते रह जायेंगे।

'गला-वला भी है?' रसिक बाबू ने पूछा था।

तब उसने भवप्रीता का एक प्रसिद्ध झूमर गाकर सुना दिया जो कि वह अपने बापू को गाते सुन कर सीख गयी थी—

'शक्तिशेले जबे पड़िला लखन,
कान्देन श्रीराम राजीव लोचन,
भासेन नयन नीरे...;
उठ-उठ बीर, धर धनु तीर
दश शिर ब'धि बारे।'

चपला ने एक बार रसिक बाबू को देखा था और रसिक बाबू ने एक बार

लोग सिटपिटाए-से आगे बढ़ने लगे। मेरी आंखें उसके तेज-दीप्त मुखमंडल पर टिकी थीं। अपनी तरफ गौर से देखते पा कर उसने चुटकी ली, 'बहुत सुंदर लग रही हूं न? अरे, यही सुंदरता तो मेरी दुश्मन बन गयी। खैर, अब तुम्हारा चानस ; चांसद्ध तो गया नुनुआं। तुम्हारे काकू ने हाथ मार दिया।' और वह खिलखिला कर हंस पड़ी। मेरा मुंह लटक गया। 'तुम्हारी आदत नहीं छूटेगी। बच्चों से भी मजाक करने लगती हो?' रसिक काकू ने उसका हाथ पकड़ा और खींच कर साथ कर लिया। मेरी ओर मुड़ कर बोले, 'कुछ मन में न लाना नुनुआं!'

चपला को। दोनों अभिभूत हो गए थे–यह तो हीरा है!

'हीरा नहीं, पारस है' चपला ने कहा था, 'इससे बहुत सोना बनेगा। थोड़ी-सी मिहनत करनी पड़ेगी।' फिर उसकी और मुखातिब होकर पूछा था, 'तैयार हो कर आई हो?'

'तैयार क्या होना है? तीन बार शादी हो कर छूट गयी। अपने ही खाने का नहीं जुटा पते हैं लोग। जैसे ही शरीर की गर्मी उतरती है, पेट पर लात मारने लगते हैं। बाप की बोझ बनकर रह रही हूँ। माँ भी सौतेली है। रात-दिन गालियाँ देती रहती है–एक हिस्सा डकार जाती हूँ, इसलिए। ऊपर से, गाँव के बाबू लोगों के छोकरे जहाँ पाते हैं...। इससे तो अच्छा है, नाचूंगी, गाऊंगी, कमाउंगी, खाऊंगी।

चपला हँसी। अनुभव की हँसी थी। बोली–'इतना आसन समझती हो?'

'आसन हो या मुश्किल, अब आप ही लोगों का आसरा है। मैं लौटकर नहीं जाऊंगी।'

'ठीक है, मत जाओ। लेकिन, तुम्हारा नाम बदलना पड़ेगा। वैसे भी घर का नाम नाच में नहीं चलता है। और चूंकि तुम बिजली की तरह चमकती हो, इसलिए तुम्हारा नाम होगा–बिजली!' रसिक बाबू ने कहा।

परंतु, उसने उस तरफ कोई ध्यान नहीं दिया। उल्टे पूछा, 'कुछ खाने को मिलेगा?'

'हां-हां, क्यों नहीं! चपला, इसे ले जाकर खाना खिलाओ।' रसिक बाबू ने कहा तो कृतज्ञता भरी नजरों से उन्हें देखती हुई वह चपला के साथ अंदर चली गयी थी।

उस रात वह लौटकर नहीं आई थी। सबेरे बहुत हंगामा हुआ था। हालांकि, बाप मन-ही-मन खुश हो रहा था कि चलो, एक बला टली। लेकिन, लोक-लाज के लिए शोर-शराबा किया। यहाँ खोजा, वहां खोजा। सौतेली माँ भी रोई। फिर खबर उड़ी कि नचनी वाले उसे भगा कर ले गए हैं। तमाशा बंद हो गया। बाप आश्वस्त हो गया। बेटी एक ठौर पर पहुँच गयी थी। जी हाँ, रसिक बाबू के ठौर पर!

रसिक बाबू देवता आदमी थे। हरदम उसे बेटी की तरह रक्खा। चपला भी कम थी क्या? दोनों उस पर बड़ी मिहनत करते। देर गयी रात तक उसे नाच सिखाते। गाने के गुर बताते। एक समय था वह, जब आस-पास के इलाकों में रसिक बाबू-सा कोई गायक नहीं था। कैसे-कैसे और किस-किस के झूमर नहीं आते थे इन्हें! 'टान' सुर से लेकर हल्के सुर तक। भवप्रीता से शुरू कर के हाड़ी राम और चामू तक के! बहुत से झूमर तो इनके खुद के बनाये थे। उनके अद्‌भुत गले के साथ अंगुलियाँ जब अद्‌भुत रूप से मादल पर थिरकने लगतीं, बिजली का रोम-रोम नाच उठता। कभी-कभी तो ऐसा हुआ कि रसिक बाबू ने गायन बंद कर दिया, ताल तोड़ दिया, लेकिन वह नाचती रही तब तक, जब तक कि रसिक बाबू कह नहीं उठते–'वाह, वाह!' तब वह झुककर उनके चरणों की धूल माथे पर लेती और उनके पास ही बैठ जाती। रसिक बाबू उसके सर पर हाथ फेरते और आशीष देते–'तुममें बहुत कला है बेटे। तुम साक्षात् अप्सरा की संतान हो। एक दिन तुम्हारा बहुत नाम होगा!'

और हुआ भी वही, बिजली की ऐसी धूम मची कि जहाँ नाच, वहाँ बिजली! कितने लोग तो बयाना लेकर आते, लेकिन निराश लौट जाते। शादी-ब्याह के दिनों में तो महीनों पहले से उसके दिन तय रहते। इन दिनों उसके खान-पान, रख-रखाव सबका ख्याल चपला रखा करती थी। कितना प्रेम दिया था उन्होंने! कितने सारे 'गुर' बताये थे।

पैसा बरस रहा था, लेकिन, चपला का दिया सबक पैसों के मामले में भी वह अमल कर रही थी। चपला ने कहा था, 'नाच के समय 'फेरी' लेने के लिए कभी भी 'आसर' से बाहर मत जाओ। बहुत हंगामे हो जाते हैं इस कारण से। हाँ, कोई कद्रदान अगर 'आसर' पर आ कर 'फेरी' दे जाए, तो लेना बेजा नहीं है। उसे स्वीकार किया जा सकता है। यह 'फेरी' का पैसा उसका अपना पैसा होता। रसिक बाबू और चपला दीदी कभी उसका हिसाब नहीं मांगते। और, जो बयाने का पैसा आता वह सम्मिलित होता। उसी से घर चलता।

और अब वह वाक्या, जब 'बिजली' की लाल काकू से मुलाकात हुई और वह 'बिजली बाई' से 'नचनी काकी' बन गयी।

सब समय का खेल है, बिजली बाई से नचनी काकी बनने के बाद एक भेंट में उसने मुझसे कहा था, 'एक समय था नुनुआं, जब पेट की आग बुझाने के लिए मुझे यह (घटिया) रास्ता अख्तियार करना पड़ा था। और अभी एक समय है कि, कद-काठी बनाये रखने के लिए भूखा रहना जरूरी हो जाता है। दुख सिर्फ यही रहा कि जब तक मेरी शोहरत बनी और मैं कुछ कर सकने लायक हुई, मेरा बूढ़ा बाप

''चपला के लिए भी यह नयी परिस्थिति थी। उसने जिंदगी भर विभिन्न जगहों पर नाचा था लेकिन ऐसा हुड्दंग कभी, कहीं नहीं हुआ था। बहुत से लोग उठ कर अब खड़े हो गए थे। चपला ने कहा, 'बेटी, उठ कर खड़ी तो हो जाओ। लोग तुम्हें बैठा देख ज्यादा विचलित हो गए हैं। और संभव है, तो एक हिंदी गाना, टूटा-फूटा जैसा भी हो, गा दो। सत्यानाश हो इन फिल्म वालों का। नए लड़कों का दिमाग इन लोगों ने खराब कर दिया है!''

और मेरी सौतेली माँ, दोनों मर चुके थे। मैं चाह कर भी उन्हें कोई सुख न पहुंचा सकी।'

लाल काकू से उसकी मुलाकात भी समय का ही एक खेल कहिये। उस वक्त हम काफी छोटे थे। हाफ पैंट तक पहुँची थी हमारी उम्र। मेरे गाँव में भी उसके नाच का आयोजन था। किसी बारात के साथ आई थी। आठों गाँव में खबर फैल गयी–बिजली बाई का नाच होगा। शाम होते ही लोग जमा होने शुरू हो गए थे। बन-संवर कर जब बिजली बाई आसर में आई तो उसका दिल काँपने लगा। इतना बड़ा आसर उसके अब तक के जीवन में कभी न जमा था। चपला हरदम की तरह उसके साथ थी। उसने बिजली बाई की घबड़ाहट भांप ली। एक मीठी झिडकी दी, 'नादानी मत करो। यह तुम्हारी शोहरत है। इसे अपना इनाम समझो। फिर मैं तो हूँ ही।' चपला दी की बातों ने उसमें हिम्मत भरी और वह घुंघरू बांधकर खड़ी हो गई।

क्या समां था वह, तालियों की गड़गड़ाहट गूंज गई। एक डेढ़ सौ तो सिर्फ बाराती थे। ऊपर से 'आठों गांव' की जनता की भीड़! उसने चपला दी की नीति का अनुसरण करते हुए सामने बैठे गांव घर के बुजुर्गों के पैर छुए और संभल कर खड़ी हो गई और जब झूमर शुरू किया–

'के वामा केशरी पऽरे,
दस करे अस्त्र धऽरे,
जुझिछेन घोर समरे;
रुपे जिनी चपला,
महेश जार प्रेम पागऽला'

(वह वामा कौन है, जो सिंह पर सवार है, जिसके दसों हाथ में अस्त्र-शस्त्र हैं और जो युद्ध में घमासान लड़ाई लड़ रही है? जिसका रूप बिजली को मात देता है, शिव जी जिसके प्रेम में पागल हैं?)

थाय-थाय लोग! बुत बन गए हों जैसे! रूप, सुर और ताल ने सबको जड़कर दिया था। रसिक बाबू ने चपला के कान में कहा, 'आज मिहनत सफल हो गयी। भवप्रीता ने इस जैसी वामा को देख कर ही, यह झूमर लिखा होगा।' और उसने एक के बाद एक, झुमरों की झड़ी लगा दी। जब हलके सुरों पर आई तो फिर भदरिया, मल्हरिया, झूमटा, खेमटा सब! (ये सब झुमरों के प्रकार हैं)

रात काफी बीत गयी थी। बिजली बाई को थकान होने लगी। पर आसर था कि टूट ही नहीं रहा था। जो जहाँ था, वहीं जड़ हो गया था। तभी दूर से किसी ने आवाज लगाई–'हिंदी गाओ, हिंदी गाना!' फिर उसके साथ पांच-दस स्वर एक साथ बोल उठे, 'हां, हां, हिंदी गाना! हिंदी गाना!!'

शांति भंग हो गई थी। बिजली बाई की जादू का असर जैसे अचानक किसी ने झकझोर कर तोड़ दिया हो! रसिक बाबू ने गौर किया, आवाज लगाने वाले श्रीरंग पुर गांव के कुछ छोकरे थे, जो ऐसे अवसरों पर हुड्दंग मचाने के लिए कुख्यात थे। सामने बैठे बुजुर्ग इस अव्यवस्था पर रुष्ट होकर चले गए थे। बिजली बाई परेशान! उसने हिंदी गाना सीखा ही न था। इधर अवश्य ही कुछ समय से हिंदी गानों की फरमाइश हो जाती थी, पर, इसे उसने कभी गंभीरता से नहीं लिया था। वह बैठ गई। तभी पीछे से स्वरों का एक और रेला उभरा, 'नचनी बैठ क्यों गयी? मंगनी की आई है क्या? उठो, उठो!'

'हां, हां हिंदी गाना गाओ। हिंदी गाना। झूमर-उमर नहीं चलेगा!'

चपला के लिए भी यह नई परिस्थिति थी। उसने जिंदगी भर विभिन्न जगहों पर नाचा था लेकिन ऐसा हुड्दंग कभी, कहीं नहीं हुआ था। बहुत से लोग उठ कर अब खड़े हो गए थे। चपला ने कहा–'बेटी, उठ कर खड़ी तो हो जाओ। लोग तुम्हें बैठा देख ज्यादा विचलित हो गए हैं और संभव है, तो एक हिंदी गाना, टूटा-फूटा जैसा भी हो, गा दो। सत्यानाश हो इन फिल्म वालों का। नए लड़कों का दिमाग इन लोगों ने खराब कर दिया है!' मन मार कर बिजली उठी तो, भीड़ से फिर वही स्वर उभरे–'हिंदी गाना, हिंदी गाना!' आखिर उसने खंखार कर गला साफ किया और गाना शुरू किया–'एक परदेशी मेरा दिल ले गया, जाते-जाते मीठा-मीठा गम दे गया...'

सम पर आते-आते उसका ताल टूट गया और अचानक किसी योजना के तहत भीड़ का एक भारी रेला

ठेलम-ठेल करता हुआ मुख्य आसर पर आ धमका। उनमें से किसी ने गैस बत्ती को लाठी से मारकर फोड़ दिया तो घुप अंधेरा छा गया। लोगों में हडकंप मच गया तब, जब बिजली बाई की पुकार उनके कानों तक पहुंची–'बचाओ, बचाओ!'

अब यह जाहिर हो गया था कि कुछ लोग, संभवत: श्री रंग पुर के वही लोग नचनी छीनकर ले जाने का प्रोग्राम बना कर आये थे। फिर तो क्या था– पूरा 'गंडोगोल' हो गया! यह गांव वालों की प्रतिष्ठा का प्रश्न था। उनके गांव से नचनी छीनकर ले जायेंगे लोग? और सबसे बड़ी प्रतिष्ठा लाल सिंह के पिता माधो सिंह की थी। वे गांव के मुखिया थे। लोगों ने देखा–एक हाथ में अपने पांच सेल का टार्च तथा दूसरे में एक लंबी लाठी लिए हुए लाल सिंह भीड़ में कूद पड़े थे, उधर-जिधर से बिजली बाई का 'बचाओ- बचाओ' स्वर आ रहा था। और जब वे भीड़ से निकले, बिजली बाई उनकी पीठ पर चिपकी पड़ी थी। तब तक 'मारो-मारो' करते हुए पूरे गांव और बारात के लोग भी श्री रंग पुर वालों पर टूट पड़े थे। तभी एक जोर का धमाका हुआ–'भडाम!' श्री रंग पुर वालों ने बम फेंक दिया था और भाग खड़े हुए थे।

बम फेंक दिया था बिजली बाई की तकदीर पर! हुआ यह कि जब श्री रंग पुर वाले भागने लगे तो भीड़ में फंसे रसिक बाबू और चपला दी ने सोचा कि वे बिजली बाई को ले भागने में सफल हो गए। वे बेतहाशा उनके पीछे दौड़ने लगे। अपने पीछे उनको दौड़ते पाकर उन्होंने एक बम फेंक दिया। और वह बम उन्हीं दोनों के बीच आ गिरा, जिससे दोनों वहीं धराशायी हो गए।

नचनी काकी ने बाद में बताया था, 'वह बम नहीं फूटा था नुनुआं, मेरी तकदीर फूटी थी'। ठीक तो! रसिक बाबू और चपला दी के अलावा उसका संसार में था ही कौन?

रसिक बाबू और चपला दी की लाशों के सामने बैठी वह रो रही थी– रसिक बाबू और चपला दी के रूप में उसके जीवन के सहारे चले गए थे। अनिश्चित भविष्य अपना विकराल मुँह बाँये सामने खड़ा था। गाँव के लोग उसे घेरकर खड़े थे। उसी समय लाल काकू आये थे। कहा था, 'रोती क्यों हो बिजली बाई? मैंने तुम्हारी जान बचाई है, सहारा भी मैं ही दूंगा! पर पहले इनका दाह-संस्कार कर लेने दो।' गाँव वालों ने दांतों तले अंगुली दबा ली जब उन्होंने देखा कि दाह-संस्कार के बाद वे सचमुच उसे लेकर अपने घर आ गए। उन्होंने नौकरों के रहने के लिए जो घर बने हुए थे, उन्हीं में से एक घर खुलवा कर उसे रहने के लिए दे दिया। बिजली बाई के नचनी काकी बनने की प्रक्रिया में यह पहला कदम था।

लाल काकू के पिता माधो सिंह, जिन्हें हमलोग मुखिया दादू कहते थे, उस दिन घर पर नहीं थे। दूसरे दिन लौटे तो बेटे की कृति देख कर सर पीट लिया। उनके घर एक 'रंडी' ने आश्रय ले लिया था। लाल काकू उनके इकलौते लड़के थे। शादी-शुदा थे और दो बच्चों के बाप भी। मुखिया दादू ने हुक्म जारी किया 'निकालो इस रंडी को मेरे घर से या फिर तुम खुद इसे लेकर निकल जाओ।'

लाल काकू उन दिनों उनके सामने नहीं फटकते थे। गांव के कुछ लोगों ने मुखिया दादू को समझाया–'अरे, लाल ने उसे थोड़े ही अपने घर बिठाया है? उसे अपने नौकरों की ही एक जगह दी है। एक गरीब को आसरा दिया है तो रहने दो। मिहनत-मजदूरी कर के रह लेगी।' लेकिन, होना तो कुछ और ही था। लाल काकू रात-दिन बिजली बाई के यहां ही पड़े रहने लगे। जब मन होता उससे झूमर सुनते और बाकी समय 'टुकुर-टुकुर' उसका मुँह ताकते रहते। अपनी पत्नी और बच्चों की सुध लिए हुए एक अरसा बीत गया था, उनका। अपने ही घर में अपना सुहाग लुटता देख कर लाल काकू की पत्नी से न रहा गया। एक दिन, जब लाल काकू कहीं बाहर घुमने गए हुए थे, ठीक एक क्षत्राणी की तरह वह दो मंजिले से उतरी और झोंटा पकड़ कर बिजली बाई को घर से निकाल बाहर किया तथा कमरे में ताला जड़ दिया।

''बम फेंक दिया था बिजली बाई की तकदीर पर! हुआ यह कि जब श्री रंग पुर वाले भागने लगे तो भीड़ में फंसे रसिक बाबू और चपला दी ने सोचा कि वे बिजली बाई को ले भागने में सफल हो गए। वे बेतहाशा उनके पीछे दौड़ने लगे। अपने पीछे उनको दौड़ते पाकर उन्होंने एक बम फेंक दिया। और वह बम उन्हीं दोनों के बीच आ गिरा, जिससे दोनों वहीं धराशायी हो गए।''

जिस आदमी को अपने से कभी फूल तोड़ने तक की जरूरत नहीं पड़ी, वह मेरे लिए कोयले तोड़ रहा था! उन दिनों उन्होंने क्या दु:ख नहीं झेले, लेकिन, आन की बात थी और शरण में आई अबला की रक्षा का प्रश्न था, भले वह 'पतुरिया' ही क्यों न हो, लाल काकू चट्टान की तरह अड़े रहे।'

इन्हीं दिनों बिजली बाई नचनी काकी बन गयी थी।

'नीच जाति की औरत 'मरद' की कद्र नहीं जानती है, ऐसा लोग कहते हैं। किंतु लोग उन दिनों बिजली बाई को देखते तो उससे सबक लेते' एक बार प्रसंग वश लाल काकू ने मुझे बताया था। बनाव-सिंगार तो तो उसने कब का छोड़ दिया था। गृहस्थ औरतों की तरह सर पर पल्लू भी उसी समय से रखने लगी थी और लाल काकू उसके ब्याहता पति से भी अधिक सम्मान के हो गए थे। वह सेवा की मूर्ति बन गयी थी।

किंतु, इस बीच यहां गांव में भयानक परिवर्तन हो गए थे। मुखिया दादू को इस घटना या दुर्घटना ने तोड़ दिया था। उन्होंने अपनी पूरी संपत्ति अपनी बहू और पोतों के नाम कर दी और एकाध जमीन फटे तो बिजली बाई धंस जाये उसमें, ऐसी हालत हो गयी उसकी। नचनी थी, नाचती थी। पर इस तरह की बेइज्जती उसकी कभी नहीं हुई थी। वह आंगन में पड़ी सुबक रही थी कि बाहर से घूम-घाम कर लाल काकू आ गए। स्थिति समझने में उन्हें देर न लगी। गाँव के लोग तमाशबीनों की तरह फिर जुट गए थे। उनहोंने 'खप' से बिजली बाई का एक हाथ पकड़ा और उठाते हुए कहा, 'चलो, अब यहाँ एक पल नहीं रहा जा सकता।' बिजली बाई आज्ञाकारी बालक की तरह उनके पीछे हो ली।

भीतर-ही-भीतर लाल काकू बिजली बाई से इस कदर जुड़ गए हैं कि उसके लिए घर-द्वार, लाखों की संपत्ति, सुंदर पत्नी, फूल-से दो बच्चे सब कुछ, छोड़-छाड कर जा सकते हैं, यह किसी ने अनुमान तक न किया था। उनकी इस हरकत से सभी हैरान रह गए थे और आगे-आगे उन्हें तथा पीछे-पीछे बिजली बाई को जाते हुए देखते रह गए थे। न मुखिया दादू ने उन्हें टोका, न काकी ने ही बाधा दिया।

यों तो लाल काकू शुरू से ही जरा रंगीन तबियत के आदमी रहे थे। झूमर गाने, फैशन करने, सब के शौकीन। गाँव में छैल-छबीले की तरह सज-संवर कर घूमा करते थे। छोकरियाँ उनके पीछे जान देतीं थीं। वे भी मछली फांसने में माहिर थे। मुखिया दादू ने इस उड़ते परिंदे को बंधने के लिए ही फटाफट शादी करा दी थी और दो-दो बच्चे हो जाने के बाद तो वे बिलकुल ही निश्चिंत हो गए थे। पर लाल काकू के भीतर की लाली एक दिन ऐसा रंग लाएगी, किसी ने यह सोचा भी न था। रूप। रस और रंग ने मिल कर मुखिया दादू के घर और चेहरे पर कालिख पोत दी थी।

'बड़ी यंत्रणा के दिन थे वे नुनुआं' नचनी काकी ने बताया था,' साथ में न अन्न, न पैसा। मेरे शरीर में जो गहने थे, बेच-बेच कर कुछ दिनों तक गुजारा किया। फिर एक दिन कोयला खदान में जा उठे। वहां मालिक से कह-सुन कर लाल काकू मजदूरी में लग गए। लेकिन मुझे घर से निकलने न दिया। साल बाद चल बसे। इस सुनसान घर की मालकिन बनी बहू भी एक दिन सारी जायदाद बेच-बाच कर आने नैहर जा बैठी। महल खंडहर हो गया था। लोग उसे देख कर कहते, 'बिजली बाई इस घर में बिजली बन कर गिरी थी।'

पिता की मौत का समाचार सुन कर जिस दिन लाल काकू, नचनी काकी के साथ घर लौटे, पूरा मजमा लग गया था। उस दिन कोई अपने घर के अंदर न रहा। सभी निकल-निकल कर पगडण्डी से हो कर आते हुए इन दो प्राणियों को देख रहे थे। घूंघट काढ़े हुए नचनी काकी बहुरिया ही लग रही थी। पहले तो लोगों को शंका भी हुई कि हो-न-हो इनकी ब्याहता पत्नी ही है, बच्चों को नैहर में रख, पति के साथ आ गयी है। परंतु, जब नजदीक आई, सब का भ्रम टूट गया।

लाल काकू ने सीधे अपने घर का दरवाजा खोला और अंदर चले गए। अपमानित हो कर निकली 'पतुरिया' फिर उसी घर में ससम्मान वापस लौट आई थी।

घर लौट कर आने के बाद, लाल काकू को दो भोज देने पड़े–एक जाति भोज, जिससे नचनी काकी को घर में रख लेने का प्रायश्चित्त हुआ तथा दूसरा अपने पिता का श्राद्ध।

लाल काकू गांव के मुखिया के बेटे थे। गांव में 'इज्जत' और 'दबदबा' था उनका। भोज-भात के बाद उन्हें इज्जत और दबदबा दोनों मिल गए। बिजली बाई को हम नचनी काकी कह कर पुकारने लगे थे।

लेकिन, बिजली बाई को नचनी काकी कह कर पुकारने भर से तो पेट नहीं भरता! लाल काकू को जब पता चला कि उनकी धर्मपत्नी सारी जायदाद बेच कर ही नैहर गयी हैं तो वे अर्ध-विक्षिप्त से अपनी ससुराल जा पहुंचे।

पर ससुराल वालों ने उन्हें घर में घुसने तक न दिया। पत्नी ने बात तक करने से मना कर दिया। वे चीख पड़े थे–'यह तुमने क्या कर दिया नागन?

'पत्नी ने जवाब दिया था, 'ज्यादा टें-टें मत करो। जाओ, उस रंडी का रूप धो-धो कर पिओ और मौज करो। मुझे फिर कभी अपना मुंह न दिखाना।'

लाल काकू अपमानित हो कर लोट आये थे। धम्म से आ कर खटिया में धंस गए थे। आंखों के आगे अंधेरा छा गया था। जीवन का विशाल विस्तार पहली बार उनकी ओर खा जाने वाली निगाहों से देखता हुआ प्रतीत हुआ। नचनी काकी धीरे-धीरे उनके पास आई थी। सर सहलाते हुए बोली थी, 'हताश मत होवो। मेरे कमरे में मेरे घुंघरू अब भी मौजूद हैं। तुम्हारी पत्नी ने सिर्फ मुझे निकाला था। वे घुंघरू एक खूंटी से वहां अब भी लटक रहे हैं।'

'तो क्या, फिर से नाचोगी?' असमंजस से काकू ने उसे देखा था।

'नाचने में दोष है, क्या? यह भी तो एक श्रम है। इसकी भी मजदूरी मिलती है। फिर तो तुमने भोज-भात भी खिला दिया है!'

लाल काकू कुछ कह नहीं सके थे। वह नीचे उतर कर अपने पहले वाले कमरे से घुंघरू निकाल लाई थी। उन्हें झाड़ते-पोंछते, वह गुनगुना उठी –'आमि कानूर लगिया,

जोगिनी साजिया,
देश-देशान्तरे जाबो।
नूपुर बांधिबो,
नाचिबो, गाहिबो,
खुजिया शामे आनिबो।'

(मैं अपने प्रेमी के लिए जोगिन बन कर देश-देशांतर को जाऊँगी। मैं घुंघरू बांध कर नाचूंगी, गाऊंगी और अपने प्रिय को खोज कर लाऊंगी)

एक बार फिर धूम मच गई थी। लाल काकू को अब हमलोग बेखटक रसिक काकू कहने लगे थे। वे भी सिर्फ मुस्कुरा कर रह जाते। देखते-ही-देखते रसिक काकू और नचनी काकी पुनः जैसे अपने बसंत में लौट आए थे। दोनों का काया-कल्प हो गया था। शायद दोनों को अपनी-अपनी मुरादें मिल गयी थीं, इसलिए!

उसी तालाब की मेड़ पर, फिर कहीं नाच के लिए जाते उनसे जब मेरी मुलाकात हुई, तो मैंने पूछ लिया–'क्यों काकी, अब तो हिंदी गाना सीख लिया है न?'

नचनी काकी खिलखिला पड़ी। बोली–'तुम क्यों फिकर करते हो नुनुआं? तुम्हारे बेटे के जन्म पर जब तुम्हाते यहां नाचूंगी न, तब सुनना, सीखा है कि नहीं?'

मैं हंसता हुआ आगे बढ़ने ही वाला था कि नचनी काकी ने बुलाया–'नुनुआं, सुनो तो!' फिर एकांत में ले जाकर कहा–'इनकी ससुराल जानते हो?'

'रसिक काकू की?'

'अरे हां, हां, तुम्हारे लाल काकू की।'

'बिलकुल जानता हूँ।'

'मेरा एक काम कर दोगे?'

'कर दूंगा।'

'तो सुनो। ये लो, कुछ रुपये हैं। एक अच्छी-सी साड़ी और इनके दोनों बच्चों के लिए कुरते और पतलून ले कर कल ही पहुंचा देना। अपनी काकी को कहना, 'जितिया के लिए काकू ने भेजे हैं। हरगिज मेरा नाम नहीं लेना। और यह बात लाल काकू को भी नहीं जानने देना।' फिर एक लंबी सांस लेती हुई बोली, 'देखें भगवान कब सुनता है? बच्चों ने तो आना-जाना शुरू कर दिया है। मुझे मौसी कहते हैं। कितना अच्छा लगता है, तुम्हें क्या बताऊं नुनुआं! एक 'वही' अकड़ी हुई है। देखूं, सौगात इस बार भी वापस न आ जाए! दोनों के मन का मैल धोकर, इनका उजड़ा घर बसा दूं, इससे अधिक मुझे क्या चाहिए?'

उसने आंचल से आँखों के कोर पोंछे। आँसू निकल आये थे।

'अच्छा जाओ, पैसे संभाल का रखना किंतु!'

फिर जाते-जाते जोर से पुकार उठी– 'और हाँ! तुम्हारे यहाँ बेटा होगा तो खबर देना जरूर! पैसे नहीं लूंगी, डरना मत। नाच दूंगी, यूँ ही!' उसकी खिल-खिलाहट हवा में गूँज गई थी।

मैं कभी अपने हाथ के पैसों को देख रहा था और कभी जाती हुई उस ललना को!□